Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 4 | ISSN : 2582-0095

हिन्दी साहित्य में उपन्यास विधा का उद्भव एवं विकास

इन्दुबाला यदुवंशी
शोध छात्रा–हिन्दी,
श्री गान्धी पी0 जी0 कॉलेज मालटारी, आजगमढ़,
सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय,
जौनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत।

शोध आलेख सार– हिन्दी उपन्यास की कथा–भूमि काफी विस्तृत हो चुकी है और इन्हीं वर्गों से लेखक ऊँचे स्वर में सामाजिक न्याय की माँग करने लगे हैं। यदि यही प्रयास रहा तो हम उपन्यास न्याय की माँग करने लगे हैं। यदि यही प्रयास रहा तो हम उपन्यास साहित्य को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने में सक्षम रहेंगे और हिन्दी का व्यापक प्रचार–प्रसार करने में सफल हो सकते हैं।

मुख्यशब्द– हिन्दी, उपन्यास, कथा–भूमि, साहित्य, सामाजिक, अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय।

उपन्यास शब्द दो शब्दों उप और न्यास के मिलने से बना है जिसका अर्थ है– समीप रखना अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि उसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहा हैं, वह विधा उपन्यास कहलाती है क्योंकि इस विधा में मानव जीवन का चित्र बहुत निकट से चित्रित होता दिखाई देता है।

उपन्यास के लिए 'अंग्रेजी' में 'Novel' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'न्यू इंग्लिश डिक्शनरी' में 'Novel' की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–

''नॉवेल वह विस्तृत गद्यात्मक आख्यान प्रधान रचना है जिसमें वास्तविक जीवन का अनुकरण करने वाली घटनाओं एवं पात्रों का एक व्यवस्थित कथावस्तु के रूप में वर्णन करता है।''[1]

गद्य की प्रमुख विधाओं में उपन्यास को सबसे आधुनिक विधा माना जाता है। हिन्दी में नॉवेल के अर्थ में उपन्यास शब्द का पहला प्रयोग 1875 ई0 में हुआ और बंगला में उपन्यास शब्द का पहला प्रयोग 1862 ई0 में हुआ जो भूदेव मुखोपाध्याय द्वारा किया गया था।

उपन्यास की रचना करने वाले तत्व छः माने गये हैं– कथानक, चरित्र या पात्र, संवाद या कथोपकथन, देशकाल, शैली, उद्देश्य परन्तु इन छः तत्वों के विषय में भी एक राय मान्यता नहीं रखती, कुछ विद्वानों ने उद्देश्य की जगह रस को प्रमुखता दी है, तो कुछ रस और उद्देश्य दोनों को मान्यता प्रदान करते हैं। प्रत्येक पाठक उपन्यास से यह अपेक्षा रखता है कि उपन्यास की कथावस्तु के विविध प्रसंग एवं घटनाएँ एक धागे में इस प्रकार पिरोयी गयी हों कि वह अलग–अलग न प्रतीत हों।

अपने इतिहास में 'उपन्यास' के सम्बन्ध में विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि, ''निपुण उपन्यासकारों को केवल राजनीतिक दलों द्वारा प्रचारित बातों को लेकर ही न चलना चाहिए, वस्तुस्थिति पर अपनी व्यापक दृष्टि भी डालनी चाहिए।''[2]

शुक्ल जी का कथन इस बात को प्रमाणित करता है कि आचार्य शुक्ल देश–विदेश की नवीनतम साहित्यिक गतिविधियों पर बराबर निगाह रखते थे और किसी भी प्रवृत्ति या स्थापना के अन्य अनुकरण को कल्याणकारी नहीं मानते थे। उन्हें निरन्तर इस बात की चिन्ता रहती थी कि अपने साहित्य का एक स्वतंत्र व्यक्तित्व होना चाहिए। हिन्दी साहित्य की स्वतंत्र प्रतिमा गढ़ने के लिए उन्होंने अथक प्रयत्न किया। वे साहित्य को राजनीति से ऊपर देखना चाहते थे और यही सोचते थे कि साहित्यिकारों को साहित्य हमेशा राजनीति से ऊपर रखना चाहिए न कि हम उसके इशारों पर नृत्य करें।

हिन्दी उपन्यास का वास्तविक विकास भारतेन्दु युग से माना जाता है, जिसका सम्बन्ध भारतीय नवजागरण से जुडा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लाला श्रीनिवास द्वारा रचित 'परीक्षागुरू' जो सन् 1882 में प्रकाशित हुआ, इसे हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार किया है। हिन्दी उपन्यासों के उद्‌भव एवं विकास के सम्बन्ध में उपन्यासों का विभाजन तीन कालखण्डों में किया गया है–

1. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास
2. प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास
3. प्रेमचन्द्रोत्तर हिन्दी उपन्यास।

1. प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास :

प्रेमचन्द्र पूर्व युग में पं0 श्रद्धाराम फिल्लौरी द्वारा सन् 1877 में 'भाग्यवती' उपन्यास लिखा गया जिसकी सामाजिक उपन्यास के रूप में बहुत प्रशंसा हुई थी। भले ही यह अंग्रेजी ढंग का मौलिक उपन्यास न हो किन्तु विषय वस्तु की दृष्टि से इसे हिन्दी का प्रथम आधुनिक उपन्यास कह सकते हैं। भारतेन्दु युगीन हिन्दी उपन्यासों पर विचार करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है– ''नाटकों और निबन्धों की ओर विशेष झुकाव रहने पर भी बंगभाषा की देखा–देखी नए ढंग के उपन्यासों की ओर ध्यान जा चुका था। इस समय तक बंगभाषा में बहुत से अच्छे उपन्यास निकल चुके थे। अतः साहित्य के इस विभाग की शून्यता शीघ्र हटाने के लिए उनके अनुवाद आवश्यक प्रतीत हुए।''[3]

वास्तव में प्रेमचन्द–पूर्व युग में हमारी साहित्य चेतना दो प्रमुख प्रवृत्तियों में परिचालित थी। एक प्रवृत्ति लोगों के मनोरंजन का कारण बनी तथा दूसरी समाज को जागरूक करने की ऐयारी, तिलस्मी एवं कल्पना पर आधारित उपन्यास मनोरंजन को ध्यान में रखते हुए लिखे गये और शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास इस युग में बहुत कही कम लिखे गये। समाज को जागरूक करने की प्रेरणा से जो उपन्यास लिखे गये वे सुधारवादी थे और कुछ उपन्यास नवीन बौद्धिक जागरण का स्वागत करते हुए नए सुधारे हुए का समर्थन कर रहे थे। इसी समय बालकृष्ण भट्‌ट का 'नूतन ब्रह्मचारी', ठाकुर जगमोहन सिंह का 'श्यामा स्वप्न', राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिन्दू', लज्जाराम मेहता का 'धूर्त रसिकलाल' आदि उपन्यास प्रकाशित हुए।

किशोरीलाल गोस्वामी प्रेमचन्द्र–पूर्व युग के सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। लीलावती व आदर्श सती, त्रिवेणी व सौभाग्यश्रेणी आदि उपन्यासों में इन्होंने प्रेम के विविध रूपों का चित्रण किया है और इनके लगभग सभी

उपन्यास स्त्री–प्रधान हैं। जिस समय गोस्वामी जी एक खास प्रकार के उपन्यासों की रचना कर रहे थे, उसी समय हिन्दी उपन्यासों में कस्बे और ग्रामीण–अंचलों में उगते हुए मध्यम–वर्ग और शहरी क्षेत्रों के रईसों की जीवन शैली को वर्णित करते हुए भुवनेश्वर मिश्र 'घराऊ घटना' और जैनेन्द्र किशोर 'गुलेनार' उपन्यास लेकर साहित्य–क्षेत्र में आये। जिसमें तत्कालीन रईसों के घरेलू जीवन का सजीव एवं यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। आंचलिकता का रंग लिए हुए इन उपन्यासों में सामान्य मध्य वर्ग के घरेलू जीवन का जितना सजीव चित्रण यथार्थ रूप में प्रस्तुत किय गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'ठेठ हिन्दी का ठाट या देवबाला (1899ई0) तथा अधखिला फूल (1907ई0) नामक दो उपन्यास लिखे 'ठेठ हिन्दी का ठाट' उपन्यास में अनमेल विवाह का दुष्परिणाम दिखाया गया है तथा 'अधलिखला फूल' धर्म की महत्ता को प्रतिपादित करता हुआ धार्मिक अंधविश्वासों के कुपरिणाम को परिलक्षित करता है। ब्रजनन्दन सहाय ने बंगला साहित्य से प्रभावित होकर दो सामाजिक उपन्यासों की रचना की, जिनमें से 'सौन्दर्योपासक'' में मनोवैज्ञानिक समस्या की अभिव्यक्ति एवं 'राधाकान्त' आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया चरित्र–प्रधान उपन्यास है।

तिलस्मी व ऐयारी उपन्यासों की प्रेमचन्द–पूर्व युग में खूब धूम रही और हिन्दी में इन उपन्यासों के प्रवर्तन का श्रेय देवकी नन्दन खत्री को जाता है, इनके उपन्यासों के बारे में तो यह बात सर्वप्रसिद्ध है कि इनके उपन्यासों को पढ़ने के लिए कितने लोगों ने हिन्दी पढ़ना सीख लिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है–

''पहले मौलिक उपन्यास लेखक जिनके उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम हुई, काशी के बाबू देवकीनन्दन खत्री थे।''[4]

देवकीनन्दन खत्री ने 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास लिखकर हिन्दी में तिलस्मी, ऐयारी उपन्यासों का शुभारम्भ किया। चन्द्रकान्ता सन्तति, नरेन्द्रमोहिनी, कुसुमकुमारी आदि उपन्यास तिलस्मी व अय्यारी पर आधारित है। खत्री जी के उपन्यासों की पुनर्मूल्यांकन करते हुए प्रदीप सक्सेना ने लिया है कि, ''चन्द्रकान्ता यथार्थवाद के प्रथम उत्पाद का महाकाव्य है। वह तिलस्मी रचना नहीं है। चन्द्रकान्ता दो युगों के उस सन्धिस्थल पर खड़ी है, जहाँ से एक युग ढह रहा है और दूसरा उभर रहा है। एक जा रहा है– दूसरा आ रहा है। तब फिर यह कृति दयनीय महानता की नहीं– उस नयी सुबह की पहली दास्तान है, जिसमें उस समय के भारत की अंगड़ायाँ सुरक्षित हैं।''[5]

इन उपन्यासों को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य की कोटि में नहीं रखा है। अति प्राकृत भावना के आधार पर लिये गये इन उपन्यासों की लोकप्रियता के पीछे मध्ययुगीन विकृत रूचि उत्तरदायी है। कुछ भी हो, हिन्दी के प्रचार–प्रसार में जितना महत्वपूर्ण योगदान इन तिलस्मी उपन्यासों का है उतना किसी अन्य गद्य–विधा का नहीं। माता प्रसाद गुप्त जी का मानना है कि– ''खत्री जी की कल्पना के पीछे तत्कालीन प्रौद्योगिकी का यथार्थ है। उन्होंने एक इतिहास दृष्टि का उपयोग करने की चेष्टा की है। इतिहास दृष्टि की यह यात्रा यद्यपि भौगोलिक आधारों और पुरातात्विक सामग्री से प्रारम्भ हुई थी, लेकिन समाप्त राजनीतिक सामन्तवाद के पतनशील प्रभामण्डल के आन्तरिक विघटन और नवजागरण की लहरों के निरन्तर टकराव से उत्पन्न प्रभावों पर हुई थी।''[6]

इसी समय बाबू गोपालराम गहमरी ने गहमर से ''जासूस'' नामक मासिक पत्र निकाला और उस पत्र के लिए इनको जासूसी उपन्यास लिखने पड़े। बेकसूर की फाँसी, सरकटी लाश, जासूस की भूल, खूनी का भेद आदि इनके जासूसी उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में घटित होने वाली घटनाएँ जीवन की यथार्थ स्थिति के निकट प्रतीत होत है

और इनमें कल्पना के साथ बुद्धि का भी योगदान दिखाई पड़ता है। इस युग में बंगला–साहित्य से बहुत अनुवाद किए गए, राधाचरण गोस्वामी द्वारा दामोदर मुखर्जी के 'मृण्यमयी' उपन्यास का अनुवाद तथा बाबू गदाधर सिंह ने बंकिमचन्द्र चटर्जी के 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद किया।

प्रेमचन्द्र पूर्व युग के बारे में कुछ भी कहा जाय परन्तु यह तो सत्य है कि ये उपन्यास साहित्य के प्रेरक, सशक्त और स्फूर्ति प्रदान करने वाली परम्परा के द्योतक सिद्ध हुए और इसी के फलस्वरूप हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नये युग का आरम्भ हुआ और नवीन युग चेतना प्रेमचन्द के आगमन से फलीभूत हुई।

प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास :

हिन्दी उपन्यासों के विकास क्रम में प्रेमचन्द्र युग का बहुत बड़ा योगदान है। हिन्दी–साहित्य में इस युग को 'छायावाद युग' के नाम से जाना जाता है। छायावाद दुर्बलताओं के होते हुए भी नवजागरण का युग था क्योंकि भावावेग, आदर्शप्रियता, राष्ट्रीय–भावना, स्वच्छन्दता आदि प्रवृत्तियाँ नवजागरण का ही संकेत देती हैं। इन प्रवृत्तियों से प्रेमचन्द्र अछूते न रह सके और इन सबका अभाव उनके उपन्यासों में दिखाई देता है। गाँधीवादी आदर्श जीवन प्रणाली एवं सत्य अहिंसा आदि प्रवृत्तियाँ प्रेमचन्द पर इस कदर हावी थीं कि पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार करते हुए भी भारतीय संस्कृति के मूलभूत आधार–आदर्श, संयम, त्याग, उदारता, सेवा एवं परोपकार से ही प्रेमचन्द जीवन–दर्शन की प्रेरणा लेते थे। प्रेमचन्द के व्यावहारिक जीवन में गाँधी जी के कार्यों का पूर्ण प्रभाव था ही, आर्य समाज की तार्किकता, गाँधी जी की विनय शीलत और लोकमान्य तिलक जी के तेजस्वी स्वरूप की स्पष्ट छाप भी इनके जीवन में भरपूर दिखाई देती है। आर्य समाज, तिलक और गाँधी की विचारधारा का प्रभाव प्रेमचन्द युग की गतिशील जीवन–दृष्टि के निर्माण में सार्थक सिद्ध हुआ। साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, नशाखोरी दूर करना, स्त्रियों की उन्नति, स्वास्थ्य और सफाई की भावना का प्रचार, राष्ट्र भक्ति, राष्ट्र भाषा और निजभाषा के प्रति प्रेम की भावना एवं किसानों–मजदूरों के प्रति सच्ची सहानुभूति आदि प्रवृत्तियाँ प्रेमचन्द पर गाँधीवादी जीवन दृष्टि के स्पष्ट प्रभाव को परिलक्षित करती दिखाई देती हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि गाँधी जी के कार्यों के मूल में उनकी मानववादी विचारधारा भी कार्य कर रही थी। इस विचारधारा से प्रेमचन्द्र प्रभावित हुए बिना न रह सके। तभी तो उन्होंने जीवन में साहित्य का स्थान विषय पर विचार करते हुए लिखा भी है–

''आदिकाल से मनुष्य के लिए सबसे समीप मनुष्य है। हम जिस के सुख–दुख, हँसने–रोने का मर्म समझ सकते हैं, उसी से हमारी आत्मा का अधिक मेल होता है। हमारी मानवता जैसे विराट और विशाल होकर समस्त मानव जाति पर अधिकार पा जाती है। मानव जाति ही नहीं, चर और अचर, जड़ और चेतन सभी उसके अधिकार में आ जते हैं।''[7]

हालाँकि जीवन के अन्तिम पड़ाव में प्रेमचन्द्र आदर्शवादी प्रवृत्तियों के प्रति उदासीन हो गये थे, क्योंकि सेवासदन से गोदान तक आते–आते उनके विचार क्रान्ति का रूप धारण कर लिए थे। फलस्वरूप 'गोदान' प्रेमचन्द की परिपक्व जीवन–दृष्टि को भलीभाँति प्रमाणित करता है। गोदान उपन्यास एक ऐसी पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित है, जहाँ जैनेन्द्र की आत्मकेन्द्रित पीड़ा, इलाचन्द्र जोशी की काम कुण्ठा जनित चेतना, यशपाल का सामाजिक यथार्थवाद, भगवतीचरण वर्मा और 'अश्क' का रोमानी व्यक्तिवाद अमृत लाल नागर का मानववाद के प्रति सर्वमांगलिक निष्ठा आदि प्रेरणासूत्रों को प्रेमचन्द्र ने साहित्य–जीवन की व्यापक अनुभूति के साथ सम्बद्ध कर दिया है क्योंकि ये सभी

पाठकों की सुरूचि को जागृत करने वाले, आध्यात्मिक और मानसिक शान्ति प्रदान करने वाले और शक्ति और गति को उत्पन्न करने में सहायक हैं। इसलिए प्रेमचन्द्र के उपन्यास यथार्थ की अनुभूति, समाज मंगल, आदर्श की कल्पना आदि भावों से ओत–प्रोत हैं। सेवासदन 1918, गबन 1931, कर्मभूमि 1932, गोदान 1936 आदि प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास है। इन उपन्यासों में प्रेमचन्द्र जी ने अपने युग की सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों का चित्र खीचने का सुन्दर प्रयास किया है।

प्रेमचन्द से प्रभावित होकर प्रेमचन्द के ढंग के उपन्यास को लिखने में प्रवृत्त उपन्यासकारों में विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक शिवपूजन सहाय, भगवती प्रसाद वाजपेयी, चण्डी प्रसाद हृदयेश, राधिक रमण सिंह, सियाराम शरण गुप्त आदि प्रमुख स्थान रखते हैं। कौशिक जी ने दो उपन्यास 'माँ' और 'भिखारिणी' नाम से लिखे और इन दोनों उपन्यासों में मानव चरित्र का मर्म स्पर्शी चित्र खींचने का प्रयास कौशिक जी ने किया है। 'माँ' उपन्यास में माता की महिमा स्नेह और विवेकपूर्ण देखरेख पर प्रकाश डालते हुए 'भिखारिणी' में अन्तर्जातीय विवाह की समस्या को उठाया है तथा मानव मन के सहज आकर्षण और जातीय बन्धन की कठोरता के मार्मिक द्वन्द्व को बड़े ही सहज भाव से दर्शाने की कोशिश की है। शिवपूजन सहाय ने देहाती दुनिया नामक उपन्यास लिखकर एक प्रकार से आंचलिक उपन्यास की नीव डाली, जिस पर बाद में फणीश्वरनाथ रेणु के मैला आँचल आदि उपन्यासों द्वारा एक भवन का निर्माण किया गया, जिसकी छत्रछाया में कई आंचलिक उपन्यास फले फूले। देहाती दुनिया में सहाय जी ने ग्रामीण अंचल का सहज एवं प्रभावकारी चित्र प्रस्तुत किया है। वे स्वयं लिखते हैं ''मैं ऐसी ठेठ देहात का रहने वाला हूँ, जहाँ इस युग की नयी सभ्यता का बहुत ही धुँधला प्रकाश पहुँचा है। वहाँ केवल दो ही चीजें प्रत्यक्ष देखने में आती है– अज्ञानता का घोर अन्धकार और दरिद्रता का ताण्डव नृत्य। वहीं पर मैंने जो कुछ देखा–सुना है, उसे यथाशक्ति ज्यों का त्यों इसमें अंकित कर दिया है।''[8]

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास – प्रेमचन्दोत्तर युग में उपन्यासकारो की दो समान्तर पीढ़ियाँ कार्य कर रही थीं। पहली पीढ़ी के उपन्यासकारों का मानस संस्कार प्रेमचन्द–युग में ही हो गया था परन्तु उन्होंने जल्द ही युग–प्रवाह के साथ अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन करने के उपरान्त प्रेमचन्द–युग से आगे निकल अपनी एक सीमा बनाई और दूसरी पीढ़ी ने देश स्वतंत्र होने के पश्चात् उपन्यास लेखन के क्षेत्र में अपना कदम रखा। प्रेमचन्द जी ने भावी उपन्यासों के सम्बन्ध में भविष्यवाणी करते हुए कहा था–

''यों कहना चाहिए कि भावी उपन्यास जीवन–चरित होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। उसकी छुटाई–बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जाएगा कि जिन पर उसने विजय पायी है। हाँ, वह चरित्र इस ढंग से लिखा जाएगा कि उपन्यास मालूम हो। अभी हम झूठ को सच बनाकर दिखाना चाहते हैं, भविष्य में सच को झूठ बनाकर दिखलाना होगा। किसी किसान का चरित्र हो गया किसी देशभक्त का या किसी बड़े आदमी का पर उसका आधा यथार्थ पर होगा। तक यह काम उससे कठिन होगा जितना अब है क्योंकि ऐसे बहुत कम लोग है, जिन्हें बहुत से मनुष्य को भीतर से जानने का गौरव प्राप्त हो।''[9]

इतिहास की दृष्टि से इस काल में लिखे गये उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य जनता को जागरूक करना एवं उन्हें अपने कर्त्तव्यों की याद दिलाना था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले पूरे हिन्दी प्रदेश को एकता–सूत्र में बाँधने और उत्साह को एक निश्चित दिशा में प्रवाहित करने वाली प्रेरणा थी– ब्रिटिश साम्राज्यवाद से सतत् संघर्ष की प्रवृत्ति।

इसके साथ–साथ शोषण का विरोध, निम्नवर्ग के प्रति सहानुभूति, सामाजिक एकता, नारी–जागरण आदि अन्य प्रेरणाप्रद बातें जो साहित्यकारो की सृजन–शक्ति को जागृत करने का कार्य कर रही थी और रचनाकारों के मन में आदर्शवादी प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से कार्य कर रही थीं, साहित्यकार यथार्थ की ओर बढ़ रहे थे और उनके कदम परम्परा के प्रति आक्रामक रूप नहीं ले पाये थे। स्वच्छन्दतावादी, मानवतावादी, प्रगावादी और मनोविश्लेषणवादी प्रवृत्तियाँ धीरे–धीरे विकास की तरफ अग्रसर थी लेकिन उस युग के उपन्यासकार उद्देश्यहीनता, व्यक्तित्व की खोज, अजनबीपन और कुण्ठा जैसी प्रवृत्तियों से परिचित नहीं थे। इस श्रेणी के उपन्यासकारों में चतुरसेन शास्त्री, इलाचन्द्र जोशी सियारामशरण गुप्त, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, जैनेन्द्र कुमार, उपेन्द्रनाथ अश्क, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि आते हैं, इनमें से कुछ इतिहास को आधार बनाकर उपन्यासों की रचना करते हैं तो कुछ फ्रायड के मनोविज्ञान पर आधारित मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास लिखते हैं। इन्ही उपन्यासकारों की श्रेणी में अज्ञेय का नाम भी बड़े सम्मान से लिया जाता है। जिन्होंने शेखर एक जीवनी जैसी प्रौढ़ और सशक्त कृति का सृजन किया और आज की प्रखर वैज्ञानिक बौद्धिक चेतना के आलोक में पारम्परिक भारतीय जीवन को गहराई से देखा है तथा साथ ही साथ सभी स्तर पर आस्था की पुरानी जड़ों को झकझोरने का प्रयास किया। अज्ञेय ने तीन उपन्यासों का सृजन किया, जिसमें से शेखर एक जीवनी को कुछ विद्वान उनके विद्रोही स्वरूप से सम्बद्ध करते हैं और दूसरा 'नदी के द्वीप' शिल्प की दृष्टि से अधिक सशक्त है तथा तीसरे उपन्यास 'अपने–अपने अजनबी' में अज्ञेय कहीं न कहीं अस्तित्ववादी दर्शन से जुड़े प्रतीत होते हैं और इस उपन्यास का मुख्य विषय मृत्यु से साक्षात्कार है जिसमें मानव और उसके जीवन तथा नियति का मार्मिक विवेचन कर अज्ञेय जी ने इसे प्रभावी बना दिया है। डॉ0 इन्द्रनाथ मदान ने इस उपन्यास का मूल्यांकन करते हुए आधुनिकता के सन्दर्भ में कहा है– ''यह उपन्यास अज्ञेय की रचना–प्रक्रिया में आधुनिकता के उस दौर को सूचित करता है, जब इनकी कृतियों में आधुनिकता का अस्वीकार झलकने लगता है।''

इसके बाद सामाजिक और यथार्थवादी उपन्यासों के साथ यशपाल, भीष्म साहनी, मन्मथनाथ गुप्त, अमृतराय, अमरकान्त, राही मासूम राजा आदि का आगमन होता है। भीष्म साहनी का तमस उपन्यास भारत–पाकिस्तान विभाजन पर आधारित है, जिसमें 1947 में हुए साम्प्रदायिक दंगों की विभीषिका साहनी जी द्वारा प्रस्तुत की गई है जिसे पढ़कर यह ज्ञात होता है कि बड़े लोगों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए कैसी नीति और हथकंडे अपनाए जाते है, जिसमें उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता और ये नीतियाँ जनसाधारण के जीवन से खिलवाड़ करके राष्ट्र का इतिहास ही बदल देती है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक जन साधारण को यह समझाने का प्रयास करता है कि हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिक समस्या के समाधान के लिए व्यक्ति को आन्तरिक रूप से बदलना होगा और अपने अन्दर यह भाव विकसित करना होगा जिससे हम सामाजिक बन्धनों को काटकर मनुष्यत्त्व को ऊपर उठा सकें। झरोखें, कड़ियाँ, वसन्ती, कुन्तो, नीलू, नीलिमा नीलोफर भीष्म साहनी के प्रसिद्ध उपन्यास है।

अमरकान्त ने सूखा पत्ता, आकाश पक्षी, काले उजले दिन, सुखजीवी और इन्ही हथियारों से आदि उपन्यास लिखे, जिनमें इन्हीं हथियारों से नामक उपन्यास जो 2003 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में भारत छोड़ो आन्दोलन अगस्त 1942 से लेकर देश के स्वतंत्र होने 15 अगस्त, 1947 तक का सामाजिक यथार्थ लेखक द्वारा चित्रित किया गया है। इस रचना द्वारा लेखक ने यह विश्वास जाहिर किया है कि सभी जातियों, धर्मों एवं क्षेत्रों की एकता से ही

देश का भविष्य सुरक्षित रखा जा सकता है क्योंकि इन्हीं मूल्यों के जरिए हमने स्वतंत्रता जा सकता है और देश के आगे ले जाने के लिए इन्हीं मूल्यों का सहारा लेना होगा।

इसी श्रेणी में राही मासूम रजा का नाम आता है, जिन्होंने देश के स्वतंत्र होने से लेकर देश में आपातकाल लागू होने तक कई उपन्यास लिखे हैं। आधा गाँव उपन्यास जिसमें देश के स्वतंत्र होने, उसके दो टुकड़ो में बँटने, जमींदारी के समाप्त होने आदि का वर्णन है। टोपी शुक्ला, हिम्मत जौनपुरी और की बूँद, दिल एक सादा कागज, सीन 75, कटरा बी आरजू आदि प्रमुख है। कटरा बी आरजू नामक उपन्यास इलाहाबाद सम्प्रति प्रयागराज के कटरा में रहने वाले मध्य और गरीब वर्ग की कहानी है, जिसके द्वारा लेखक ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि कैसे गरीब लोग अपनी छोटी–छोटी आरजू पूरी नहीं कर पाते इसीलिए इस उपन्यास का नाम कटरा बी आरजू रख दिया गया। इसमें कटरा को एक प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है। 26 जून 1975 से मार्च, 1977 तक देश में आपातकाल लागू था और इस समय देश के लोगों ने जिन परिस्थितियों का सामना किया, उसका पूरा चित्रण राही मासूम रजा ने मानवीय संवेदना के साथ प्रस्तुत किया है।

ऐतिहासिक, पौराणिक उपन्यासकारों में वृन्दावन लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, अमृतलाल नागर, हजारी प्रसाद द्विवेदी और नरेन्द्र कोहली आदि आते हैं। यशपाल ने मार्क्सवादी जीवन दर्शन की व्याख्या के लिए इतिहास को आधार बनाया है। 'दिव्या' की भूमिका में उन्होंने लिखा है–

''इतिहास मनुष्य का अपनी परम्परा में आत्म विश्लेषण है। इतिहास के मंथन से प्राप्त अनुभव के अनेक रत्नों में सबसे प्रकाशमान है– मनुष्य भोक्ता से बड़ा है, केवल उसका अपना विश्वास और स्वयं ही उसका रचा हुआ विधान। अपने विश्वास और विधान के सम्मुख वह विवशता अनुभव करता है। और स्वयं ही उसे बदल भी देता है। इसी सत्य को अपने चित्रमय अतीत की भूमिका पर कल्पना में देखने का प्रयास दिव्या है।''[11]

ऐतिहासिक पौराणिक उपन्यासों के पूरे विकासक्रम को ध्यान में रखने के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि अब इतिहास या पुराण की पुनर्रचना केवल मनोरंजन की दृष्टि से नहीं की जा रही है वरन् लेखकों द्वारा उनसे प्रेरणा लेने का सुन्दर प्रयास है और उसे आज की राष्ट्रीय, सांस्कृतिक या मानवीय समस्याओं के आलोक में देखने के पश्चात् समस्याओं के समाधान में उनका उपयोग है। इसलिए आज इतिहास अतीत में संचरण का माध्यम न बनकर वर्तमान के निर्माण के महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

आंचलिक उपन्यासकारों में रेणु का मैला आँचल नागार्जुन का बलचनमा, उदयशंकर भट्ट का सागर, लहरें और मनुष्य, राजेन्द्र अवस्थी का सूरज किरन की छाँव, रामदरश मिश्र का पानी के प्राचीर, विवेकीराय का सोना–माटी, लोक ऋण, समर शेष है, शैलेष मटियानी का बोरीवाली से बोरी बन्दर तक भगवानदास मोरवाल का काला पहाड़, बाबल तेरे देश में प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में पिछड़े हुए अज्ञात अंचल या किसी अपरिचित जाति के जीवन को पूरी सहृदयता के साथ चित्रित कर क्षेत्र–विशेष में रहने वालों के जीवन की उन विशेषताओं का अंकन कियाजाता है जो उसे निजता प्रदान करती हैं और जिनके कारण वह क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से भिन्न व विशिष्ट समझा जाता है।

प्रगतिशील उपन्यासकारों में मिथिलेश्वर, विभूति नारायण राय, वीरेन्द्र जैन, ज्ञान चतुर्वेदी आदि आते हैं, जिन्होंने अपने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों अन्धविश्वासों का पर्दाफाश करके समाज को

जागरूक बनाने का प्रयास किया है। इस समय हिन्दी साहित्य जगत् में कुछ नए लेखकों का आगमन हुआ है उनमें से काशीनाथ सिंह के उपन्यास काशी का अस्सी की तर्ज पर लिखा गया बनारस टॉकीज सत्य व्यास का प्रसिद्ध उपन्यास है। प्रेमचन्द्र के गोदान की तरह कृषक जीवन की त्रासदी की कथा कहता हुआ पंकज सुबीर का 'अकाल में उत्सव' प्रसिद्ध उपन्यास है। रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' सत्य नारायण पटेल का 'गाँव भीतर गाँव' आदिवासी समाज पर कुछ लेखकों ने उपन्यास लिखे है जिनसे रणेन्द्र का 'गायब होता देश' और राकेश कुमार सिंह का 'पठार पर कोहरा' आदि उल्लेखनीय हैं।

महिला उपन्यासकारों का आगमन कथा–साहित्य में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी जागरण और स्त्री शिक्षा के व्यापक प्रचार–प्रसार के फलस्वरूप हुआ। इनमें दिनेश नंदिनी डालमिया, शशिप्रभा शास्त्री, शिवानी, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, ऊषा प्रियंवदा, राजी सेठ, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, मृणाल पाण्डेय, नासिरा शर्मा, मधु काँकरिया, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, रजनी गुप्त आदि प्रमुख हैं। कृष्णा सोबती के दो उपन्यास ''सूरजमुखी अँधेरे के'' (1972) तथा जिन्दगी नामा (1979) विशेष प्रसिद्ध है। जिन्दगीनामा एक बड़ा उपन्यास है, जिसमें कृष्णा सोबती ने पंजाब की विगत शती की पूरा ब्योरा प्रस्तुत किया है जैसे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रेमचन्द के बारे में कहा था कि यदि आप उत्तर भारत के रहन–सहन, भाषा–विचार आदि जानना चाहते हैं तो प्रेमचन्द्र से अच्छा मार्गदर्शक आपको नहीं मिल सकता ठीक उसी प्रकार डॉ0 देवराज उपाध्याय ने कृष्णा सोबती के जिन्दगी उपन्यास के बारे में अपना मत प्रस्तुत किया है–

''यदि किसी को पंजाब प्रदेश की संस्कृति, रहन–सहन, चाल–ढाल, रीति–रिवाज की जानकारी प्राप्त करनी हो, इतिहास की बात करनी हो, वहाँ की दन्तकथाओं, प्रचलित लोकोक्तियों तथा 18वीं, 19वीं शताब्दी की प्रवृत्तियों से अवगत होने की इच्छा हो तो जिन्दगीनामा से अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं।''[12]

मधु काँकरिया का उपन्यास खुले गगन के लाल सितारे नक्सलवादी आन्दोलन को आधार बनाकर लिखा गया है जिसमें लेखिका द्वारा अनेक अवसरों पर मान्यताओं और निष्कर्षो को सीधे प्रस्तुत कर महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को सामान्य कर दिया गया है। यह उपन्यास आम आदमी के लिए बेहतर स्वप्न देखने की आकांक्षा से दीप्त है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास अंचल–विशेष में रंगे होने पर भी पूर्णतया आंचलिक नहीं प्रतीत होते। उनके उपन्यासों में व्यक्ति के साथ प्रकृति, पारम्परिक संस्कार एवं पूरी लोक संस्कृति है और नारी पात्र सक्रिय और सजग हैं एवं सबसे बड़ी बात उनमें सच कहने का साहस है तथा क्रान्ति चेतना किसी विचारधारा दायरे में कैद नहीं है, इसीलिए वे खुलकर बोल पाती हैं।

मृदुला गर्ग का कठगुलाब पुरूष प्रधान उपन्यास है जिसमें मृदुला गर्ग ने उपन्यास के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि नारी सर्वत्र दोहन और शोषण की शिकार हैं। पुरूष वर्ग द्वारा स्त्री के प्रति उसकी प्रवृत्ति एक ही तरह की होती है। इस प्रकार मध्यवर्गीय परिवार के अन्तर्विरोधों और पुरूष प्रधान समाज में अपनी पहचान बनाने के लिए संघर्षरत स्थितियों का चित्र महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यास के माध्यम से खींचने का प्रयास किया है और अपने मकसद में सफल भी रही हैं।

हिन्दी उपन्यास के पूरे विकास को ध्यान से देखा जाय तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि हिन्दी उपन्यास की कथा–भूमि काफी विस्तृत हो चुकी है और इन्हीं वर्गों से लेखक ऊँचे स्वर में सामाजिक न्याय की माँग

करने लगे हैं। यदि यही प्रयास रहा तो हम उपन्यास न्याय की माँग करने लगे हैं। यदि यही प्रयास रहा तो हम उपन्यास साहित्य को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने में सक्षम रहेंगे और हिन्दी का व्यापक प्रचार–प्रसार करने में सफल हो सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. न्यू इंग्लिश डिक्शनरी
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 सं0 – 535 नागरणी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 सं0 – 455
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 सं0 – 498
5. आलोचना (पत्रिका), जनवरी – मार्च 1986, पृ0 सं0 – 53
6. आलोचना (पत्रिका), जनवरी – मार्च 1986, पृ0 सं0 – 61
7. प्रेमचन्द्र, कुछ विचार, पृ0 संख्या – 145
8. शिवपूजन सहाय, देहाती दुनिया, प्रथम संस्करण (1983), भूमिका
9. प्रेमचन्द्र, कुछ विचार, पृ0 संख्या – 104
10. डॉ0 इन्द्रनाथ मदान, आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास, पृ0 सं0 – 66
11. यशपाल, दिव्या (उपन्यास), भूमिका (1945), पृ0 सं0 – 20–21
12. डॉ0 देवराज उपाध्याय, हिन्दी साहित्य शब्द कोश (1979), पृ0 सं0 – 6